मोक्षमार्ग रहस्य प्रकाशक स्वानुभवविभूषित सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई की ९०वीं जन्म जयंति के अवसर पर कोटी कोटी वंदन !!

रत्नत्रय प्राप्त, परमागम-सुधा के रहस्यज्ञ, जिनमार्ग प्रति अखंड निष्ठावान, जिनकी निष्कारण करुणा का नित्य स्तवन करने में भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है, मोहस्वयंभूरमण समुद्र को भूजा से तीर गये ऐसे हे प्रखर पुरुषार्थ के स्वामि! भाव अप्रतिबद्धरूप से विचरनेवाले, आपके प्रति अचल प्रेम और सम्यक् प्रतीति हो, इस भावना सहित आपके चरणों में भक्ति-पुष्प अर्पण करते हैं!

- 'स्वानुभूतिप्रकाश' परिवार

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९: अंक-२९९, वर्ष-२४, नवेम्बर-२०२२

श्रावण शुक्ल २, बुधवार, दि. २०-७-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-९३, प्रवचन-३९

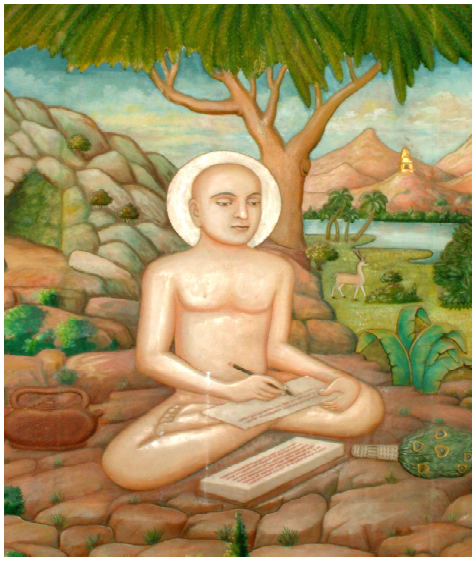

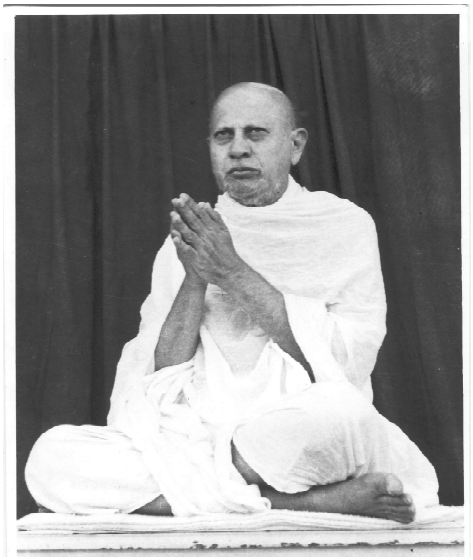

कहते हैं यह आत्मा.... आत्मा वस्तु अखण्डानन्द प्रभु के सन्मुख में जो दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई, उतना भगवान ने धर्म कहा है। उसे निर्जरा अधिक हो जाती है, आस्रव थोड़ा रहता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक थोड़ा आस्रव रहता है। अज्ञानी को तो अकेला आस्रव ही है क्योंकि मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय इनमें से एक भी नहीं मिटा है। वह पूरा आस्रव है। भगवान अरिहन्त तो कोई आस्रव नहीं है, ईर्यापथ आस्रव एक समय का, वह कोई आस्रव नहीं है। वे पूर्ण अनास्रवी, पूर्ण अनन्त ज्ञानादि को प्राप्त हुए हैं। अब धर्मी जो साधक है, उसे आत्मा के सन्मुख की दृष्टि हुई है, इसलिए आत्मा के आनन्द के अंश का अनुभव है, उसे ज्ञानचेतना अन्दर में प्रगट हुई है, इसलिए संवर और निर्जरा विशेष है, उसे थोड़ा-सा आस्रव है। कहो, समझ में आया? आहा...हा...!

इसलिए आत्मध्यान ही मोक्षमार्ग है। राग और पुण्य का ध्यान, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है; बीच में आस्रव हो, पुण्य-पाप परिणाम (हों) परन्तु वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो मोक्षस्वरूप जो भगवान आत्मा, विकार और कर्म तथा शरीर से रहित स्वरूप - ऐसा मोक्षतत्त्वस्वरूप, निश्चयमोक्षस्वरूप-शक्ति, उसकी दृष्टि करने से मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है और पुण्य-पाप तथा राग-द्वेष तो बन्ध का लक्षण है, वे तो बन्धस्वरूप है; इसलिए बन्ध के लक्ष्य से, बन्ध के स्वरूप से - आश्रय से कभी छूटने का मार्ग प्रगट नहीं होता। समझ में आया? आहा...हा...! सीधी

सरल (बात है) परन्तु इसने कभी अनन्त काल में यह प्रभु के पास रहा, यह पास रहा परन्तु इसने सन्मुख नहीं देखा। आहा...हा...! ऐसे (बाहर) ही देखा किया है और उसमें से कुछ लाभ होगा, बहिर्मुखदृष्टि से लाभ होगा, ऐसा ही इसने अन्तर्मुख भगवान आत्मा को दृष्टि में से ओझल कर दिया है। है? आहा...हा...!

भगवान पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा, जिसका सर्वज्ञ भी पूरा कथन कहने पर वाणी में न आवे - ऐसा आत्मा है। 'जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में, कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।' 'जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में, कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।' गोम्मटसार में आता है कि भगवान ने जाना, वे अनन्तवाँ भाग कह सके। आहा...हा...! 'उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे?' केवली परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ पूर्ण मुक्ति हो गयी, भाव मुक्ति (हो गयी), भले चार (अघातिकर्म) बाकी रह गये, उसका कुछ नहीं। भाव मुक्ति हो गयी। वे भी भगवान आत्मा की जात -भात की बात पूरी नहीं कह सकते तो 'उस स्वरूप को अन्य वाणी तो क्या कहे? अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब, अपूर्व अवसर ऐसा किसदिन आएगा?' श्रीमद् राजचन्द्र तीस वर्ष में भावना करते हैं। आत्मदृष्टि होने के बाद की बात है, हाँ! ओ...हो...! ऐसा भगवान आत्मा कहाँ पुण्य और पाप के विकल्प के आस्रव से जीवतत्त्व भिन्न, अरे...! उसका भान हुआ, कहते हैं कि यह बातें अनुभवगम्य हो गयीं, अनुभवगम्य! गूँगे का गुड़, गूँगा गुड़ कैसा? ऐसा भगवान आत्मा, उसका अनुभव हुआ, उसका ध्यान (हुआ) वह एक ही मोक्ष का मार्ग है।

आत्मध्यानी ही गुणस्थानों की श्रेणी चढ़ सकता है। देखो, क्या कहते हैं? चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में, सातवें में, और फिर छठवें में आता है, यह गुणश्रेणी की श्रेणी आत्मध्यानी कर सकता है। राग के विकल्प में अटका हुआ गुणस्थान की श्रेणी बढा नहीं सकता। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द शान्तस्वरूप महापिण्ड चैतन्य, चैतन्य पिण्ड, चैतन्यदल, चैतन्य नूर, चैतन्य पूर - ऐसा पूर्णानन्द प्रभु, कहते हैं, उसकी दृष्टि, उसका ध्यान - एकाग्रता द्वारा गुणस्थान की श्रेणी बढ़ती है। राग के अवलम्बन से, पुण्य से अवलम्बन से कहीं गुणश्रेणी की धारा बढ़ती नहीं है। चैतन्य के एकाग्रता की धारा से गुणस्थान धारा बढ़ती है। आहा...हा...! समझ में आया? वस्तु पूर्णानन्दस्वरूप - ऐसा आत्मा उसमें आरूढ़ होने से गुणधारा, गुणश्रेणी, गुणस्थान बढ़ते हैं। गुणधारा, गुणश्रेणी कहो या गुणस्थान (कहो)। इसके अतिरिक्त किसी राग, पुण्य और निमित्त के आश्रय से गुणस्थान की धारा बढ़ती नहीं है। आहा...हा...! कहो, इसमें समझ में आया?

मुमुक्षु को एक आत्मध्यान का ही अभ्यास करना चाहिए। फिर निर्विकल्प की थोड़ी बात की है। निश्चयनय त्रिकाल शुद्ध आत्मा का दर्शन कराता है। निश्चयनय तो आत्मा त्रिकाल शुद्ध है - ऐसा दर्शन कराता है। व्यवहारनय तो भेद और राग का दर्शन कराता है। आहा...हा...! अभी डाला है इन्होंने, भाई! सातवीं गाथा आती है न।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।

ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।। ७।।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं न? दो मत में से अभी व्यवहार का उपदेश देना, यह सच्चा मत है। यह भगवान ने कहा है और यह निषेध है, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अर्थ किया यह अभी सच्चा नहीं (- ऐसा मानते हैं)। अरे! भगवान! परन्तु यह क्या हुआ? समझ में आया कुछ? 'ण वि होदि अप्पमत्तो' जहाँ छठवें में पुण्य-पाप के विकल्प का भेद निकाल दिया, असद्भूत व्यवहार के उपचार और अनुपचार के भेद निकाल दिए और पर का ज्ञान उपचार है, उसे निकाल दिया। सातवीं (गाथा में) गुण-गुणी का भेद है, वह निकाल दिया अर्थात् सद्भूत अनुपचार निकाल दिया। अकेला ज्ञायकभाव है, उसमें यह भेद नहीं है। भेद डालना, यह विकल्प का कारण, यह बन्ध का कारण है; इसलिए यह मोक्षमार्ग नहीं है - ऐसा वहाँ सिद्ध करना है। अकेला भगवान ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक - ऐसा विकल्प नहीं, हाँ! यह तो समझाने में क्या आये? अकेला चैतन्य, भेद जो पुण्य-पाप के अचेतन, विकल्प, जड़ अर्थात् चैतन्य के नूररहित, उनसे भिन्न पड़ा हुआ चैतन्य, अकेला ज्ञान का परिणमन, ज्ञायकभाव से करे और उस परिणमन में ज्ञायकभाव शुद्ध जो

दृष्टि में आवे, उसे धर्मदृष्टि कहते हैं। आहा...हा...! अब इस दृष्टि के बिना व्यवहार अभी कहो, पंचम काल में निश्चय मोक्षमार्ग नहीं है (- ऐसा कहते हैं)। भगवान तूने गजब किया है, आहा...हा...! परन्तु निश्चय के बिना व्यवहार होता ही नहीं, स्व आश्रय से निश्चय प्रगट हुआ, तब पराश्रित कुछ राग बाकी रह गया, उसे व्यवहार कहते हैं। अकेला पराश्रयभाव हो, उसे मिथ्यादृष्टि और अधर्म कहते हैं, और अकेला स्वाश्रय पूर्ण प्रगट हो गया, वह केवलज्ञानी हो गया और स्व आश्रय की दृष्टि, ज्ञान से आश्रय शुरु हुआ है परन्तु पूर्ण स्व आश्रय अभी नहीं हुआ, उसमें शुभ रागादिक पराश्रय अभी बाकी रह गया, उसे व्यवहार कहते हैं। वस्तु की यह स्थिति है। समझ में आया? अब उसे कहते हैं कि अभी व्यवहारमोक्षमार्ग कहो, अभी निश्चय नहीं, निश्चय तो आठवें गुणस्थान से आएगा... अरे भगवान!

मुमुक्षु - गुणस्थान तो पहला छोड़ना पड़ेगा।

उत्तर - गुणस्थान किसका छोड़ेगा? व्यवहार की दृष्टिवाले को तीन काल में गुणस्थान बदलता ही नहीं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं कि निश्चयनय त्रिकाल शुद्धात्मा का दर्शन कराता है। अभेद, अभेद... भेद है, वह तो विकल्प है। विकल्प से धर्म की शुरुआत होती है? समझ में आया? फिर बहुत लम्बी बात की है। निश्चय धर्म को उपादान साधन और व्यवहार को निमित्त साधन जानना। भगवान आत्मा...! अरे...! अपने स्वरूप का आश्रय होना, यह तो कोई बात है! अनन्त काल में इसने आश्रय लिया ही नहीं, स्वयं अनन्त काल से बाहर ही धक्के मारे हैं, बहिर्बुद्धि, उसका नाम बहिर्बुद्धि है, इसका नाम ही बहिरात्मा है, इसका नाम बहिरात्मा है। अन्तरात्मा ज्ञानस्वरूप में दृष्टि देने से अभी परमात्मा भले ही नहीं हुआ परन्तु परमात्मा मेरा स्वरूप है - ऐसी दृष्टि हुई, वहाँ अन्तरात्मा हुआ। समझ में आया? और मैं पुण्य तथा पाप और राग व दया, दान, व्रतवाला हूँ, वह तो अभी मिथ्यादृष्टि है, अधर्मी, अज्ञानी है। वह तो बहिर्बुद्धि, बहिरात्मा है। बहिर (अर्थात्) जिसके स्वभाव में नहीं - ऐसे विकल्प को अपना स्वरूप मानकर वहाँ अटका है, वह तो बहिरात्मा है। आहा...हा...! सीधी बात है। भगवान सीधा सरल चिदानन्द पड़ा है। सत् सरल है, सत् सर्वत्र है, सत् सुगम है परन्तु इसने उसे दुर्लभ कर डाला है कि उसकी बात सुनना इसे (नहीं रुचती है)। निश्चय नहीं... निश्चय नहीं... निश्चय नहीं... निश्चय अर्थात् सत्य नहीं; व्यवहार अर्थात् आरोपित, वह सच्चा... आहा...हा...!

यह जैन कोई सम्प्रदाय नहीं, यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? जैन अर्थात् पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अपना आश्रय लेकर पराश्रय अज्ञान और राग-द्वेष का अभाव करे, उसे जैन कहा जाता है। यह तो वस्तु की स्थिति है, इसमें परमेश्वर ने कोई नया धर्म नहीं किया। इतने ही ऐसा कहते हैं कि भगवान ने तो सबके अनेकान्तनय लेकर धर्म कहा, ऐसा होगा?

मुमुक्षु - सबका समन्वय करते हैं।

उत्तर - धूल भी नहीं किया। वस्तु ऐसी है। सबके नय लेकर अनेकान्त मार्ग सब इकट्ठा करके, कहा? भगवान के ज्ञान में पहले से नहीं आया कि ऐसा आत्मा पूर्णानन्द अखण्ड अभेद है और दूसरों के नय इकट्ठे करके कहा। ऐसे के ऐसे... समझ में आया?

आत्मा एक समय में पूर्ण अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुवस्वभाव अनन्त गुण का पिण्ड है। पर्याय का परिणमन, द्रव्य का ध्रुवपना - ऐसा उसका स्वरूप ही है। ऐसा स्वरूप भगवान ने तो पूर्व में सम्यग्दर्शन, ज्ञान में जाना था। जन्मे तब तो तीन ज्ञान लेकर आये थे, फिर जगत के नय इकट्ठे करके कहा - ऐसा कहाँ था? आहा...हा...! कितने ही पण्डित इस पुस्तक में लिखते हैं, बहुत मतों के नय थे, उन्हें भगवान ने इकट्ठा किया। अरे...! भगवान! तू क्या कहता है?

मुमुक्षु - समन्वय करने को।

उत्तर - किसके साथ समन्वय होगा? धूल के साथ?

यह तो अखण्ड प्रभु एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड.... अनन्त गुण वे कितने? आकाश के प्रदेश से अनन्त गुणे... लाओ तो सही बात। ऐसा न हो तो यह चीज ही न हो। महा पदार्थ, महा प्रभु, असंख्य प्रदेश में अनन्त-अनन्त गुण व्याप्त हैं। स्वभाव की मूर्ति उसे क्या कहना! अरूपी स्वभाव का दल-पिण्ड, चित्पिण्ड, चित्घन,

आनन्दघन, ज्ञानघन - ऐसा शास्त्र में कहा है न? विज्ञानघन... आहा...हा...! ऐसा भगवान जिसमें आकाश के प्रदेश के अमाप... अमाप... अमाप... फिर कहाँ माप? ऐसे अमाप का अन्त नहीं, उसके प्रदेशों की संख्या से ही भगवान असंख्य प्रदेश में रहा, (आकाश के प्रदेशों से) अनन्त-अनन्त गुणे गुण उसमें है, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया? ऐसे अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुणों का जहाँ आश्रय लिया, वहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान का अनुभव हुआ, उसे आस्रव बहुत ही घट गया; संवर-निर्जरा बढ.गयी। समझ में आया?

अनन्तानन्त गुणस्वरूप भगवान की जहाँ अन्तरदृष्टि, अनुभव और सम्यक् हुआ, तब किसी गुण की, कितने ही गुण की, किंचित विपरीत अवस्था थोड़ी रही, वह तो अल्प रही है। अल्प बन्धन और अल्प आस्रव है और अनन्तानन्त गुण का जहाँ आदर होकर अनन्त-अनन्त गुण की पर्याय की व्यक्तता निर्मल सम्यग्दर्शन होने पर हुई, (वहाँ) निर्जरा अधिक हो गयी है, आस्रव घट गया है। निश्चय के कथन में तो सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं है - ऐसा भी कहा जाता है क्योंकि स्वभाव में नहीं है, उसकी दृष्टि में नहीं है। बन्ध का भाव बन्ध के कारण में डाल दिया है, ज्ञेय में (डाल दिया), परन्तु कदाचित् उसकी पर्याय में मन्दता है क्योंकि पूर्ण अनन्त गुणों की पूर्ण निर्मल व्यक्तदशा नहीं हुई, इसलिए उसे अल्प रागादिक है परन्तु वह आस्रव बहुत थोड़ा है और मोक्षमार्ग तो अन्दर बढ़ गया, अधिक (हो गया है)। आत्मा 'णाणसहावाधियं मुणदि आदं' राग से, निमित्त से, भेद से भिन्न करके अधिक आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई, उसे मोक्षमार्ग हाथ में आ गया। आहा...हा...! परन्तु यह वस्तु का जोर है, भाई! दृष्टि तो कर उसकी न! ऐसा आत्मा है। भाई! आत्मा अर्थात् क्या? साक्षात् परमात्मस्वरूप, द्रव्यस्वरूप अर्थात् साक्षात् शक्तिस्वभाव गुण परमात्मरूप। समझ में आया?

कहते हैं कि उसमें जहाँ एकाग्र हो तो उसे उपादान का साधन बढ़ गया है और किंचित राग बाकी रहा है तो उसे निमित्तरूप कहा जाता है परन्तु शुद्ध उपादान अन्तर अनन्त गुणों का पिण्ड, उसका जहाँ साधन एकाग्र होकर हुआ, वह शुद्ध उपादान साधन निश्चय है। देव-शास्त्र-गुरु आदि का राग किंचित् बाकी रहा, उसे व्यवहार निमित्त साधन का आरोप करके साधन कहा है; वस्तुतः तो वह बाधक है। समझ में आया? परन्तु उस गुणस्थान के योग्य, ऐसे ही सच्चे देव, ऐसे ही सच्चे गुरु, ऐसे ही सच्चे शास्त्र का उसे उस प्रकार का शुभराग होता है; दूसरा कुदेव, कुगुरु का नहीं होता और उस छठे गुणस्थानादि में राग की मन्दता इतनी होती है कि पंच महाव्रत के परिणाम में वस्त्र-पात्र ग्रहण की वृत्ति नहीं होती - ऐसे कषाय की मन्दता की योग्यता व्यवहार से निमित्त की अनुकूलता देखकर व्यवहार साधन का आरोप किया है। समझ में आया? यह वस्तुस्थिति तीन काल में बदले ऐसी नहीं है। समझ में आया? अतः पहले इसे निश्चय का आश्रय करना चाहिए।

(प्रवचनका शेष अंक अगले अंकमें...)

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब You tube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के Subtitle साथ अब देखिये। You tube में Satshrut prabhavna channel पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। Channel को Subscribe करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का Notification स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित 'अनुभव संजीवनी'में से भक्ति विषयक चुने हुए वचनामृत

प्रशस्तराग भक्तिका बहिरंग है, 'सत्'का ज्ञान भक्तिका अंतरंग है, जिससे जगत अनजान है। - यह रहस्य सारभूत है, राग हेय है और उक्त ज्ञान उपादेय है, जो मुमुक्षुको समकितका कारण है; एवं सर्व साधकको विशेषरूपसे वर्तता है। (- कृपालुदेव) (२३५)

*

धर्मात्माके प्रति निष्काम ऐसी भक्ति / प्रेम - वह वास्तवमें धर्मके प्रतिका प्रेम अथवा भक्ति है। अतः ऐसी अत्यंत भक्तिके कारण, भक्तिमानके प्रति भी भक्ति सहज आ जाती है, तब मुमुक्षुजीव समकित सम्बन्धित निर्मलतामें स्थित होता है - अथवा उस भूमिकाके बहुतसे दोषोंसे निवृत्त होनेके योग्य बनता है। ऐसी योग्यता ही ज्ञानप्राप्तिका कारण है, वरना अल्पज्ञानकी भूमिकामें अंतर्मुखताके अनजाने मार्गके प्रति ज्ञानप्रधानतासे जानेमें, स्वरूप सम्बन्धी भ्रांति अथवा स्वच्छंदादि दोषकी प्राप्ति हो जाती है। अतः उक्त प्रकारकी भक्तिका मुमुक्षुजीवको प्रीतिपूर्वक आराधन कर्त्तव्य है। (५८९)

*

जिसकी दशा मोहरहित हुई है ऐसे निर्मोही पुरुषकी दशाका बहुमान-भक्ति, भक्ति करनेवालेके दर्शनमोहको परिक्षीण कर देती है; अथवा ऐसे भक्तिवानके मोहका अनुभाग सहजरूपसे कम होता है / टूट जाता है; यह निःसंशय है। यह रहस्यभक्तिका स्वरूप है; जो सहजरूपसे निष्कामस्वरुप ही होती है। मोहका अभाव होना दुष्कर है, फिर भी सुगमतासे होवे इसके लिए महापुरुषोंने इस भक्तिका बोध दिया है। फिर भी (इसके लिए) वैसे निर्मोही महात्मा होने / मिलने चाहिए। जिस धरातल पर ऐसे आत्मा विचरते हैं, वह धरा भी धन्य है।

सत्पुरुषकी विद्यमानताकी दुर्लभता तीनोंकाल रही है, तो फिर इस कालमें दुर्लभ हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु मुमुक्षुजीवको आश्रयभक्तिकी भावनामें रहने जैसा है। अविद्यमानता देखकर, अगर भावना बढ़ती है तो पात्रता है और अविद्यमानता देखकर भावना छूट जाय या मंद पड़ जाय तो पात्रताका अभाव है। पात्रतावालेकी भावनामें फर्क नहीं पड़ता। (७००)

*

सत्पुरुषके हृदयमें बिराजमान प्रगट परमतत्त्वका दर्शन, धर्मात्माकी अंतर परिणति द्वारा मुमुक्षुजीवको होता है, तब ओघभक्तिका अभाव होकर सच्ची भक्ति प्रगट होती है। और सत्पुरुष परमात्मारूप दिखाई देते हैं। इस प्रकार सत्पुरुषमें परमेश्वरबुद्धि आने पर, मुमुक्षुजीवकी पात्रता उत्तम कक्षाकी होती है। यहाँ पर दर्शनमोह भी अत्यंत मंद होता है, इतना ही नहीं जैसे-जैसे सत्पुरुषके प्रति भक्तिके भाव वर्धमान होते जाते हैं, वैसे-वैसे दर्शनमोह सहजरूपसे कमज़ोर / पतला पड़ता जाता है, और आत्मस्वरूपका भावभासन होनेके योग्य ज्ञानकी (मतिकी) निर्मलता आती

समाधान :- सत्पुरुषके प्रति पराभक्ति प्रगट होवे तब। 'पर प्रेम प्रवाह बढ़े प्रभुसे, सब आगम भेद सुउर बसे।'

है और सहज मार्गप्राप्ति होती है। (८११)

*

गुण और गुणवानके प्रति बहुमान वह भक्तिका सच्चा स्वरूप है। ऐसी सच्ची भक्ति गुणप्राप्ति और ज्ञानप्राप्तिका हेतु है। इस भक्तिके बलसे ज्ञान निर्मल होता है। निर्मलज्ञान मोक्षका हेतु है। भाषाज्ञानसे या विद्वत्तासे निर्मलज्ञानकी कक्षा ऊँची है, अलग प्रकारकी है। (१०५४)

*

यथार्थ उपकारी अमृतपान दातार पुरुषप्रत्यक्षके प्रति अनन्यभक्तिरूप एकत्वभावना मुमुक्षुजीवको उत्कृष्ट आत्मशुद्धिका कारण है। अतः उनके समागमकी निरंतर भावना रहा करती है। (११००)

*

सरलता, मध्यस्थता, शांतता, वैराग्य, आत्मजागृति आदि गुणोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो, वैसे सद्वर्तनसे ज्ञानीपुरुषकी भक्ति प्राप्त होती है। इसके पहले अवगुणदशामें जो भक्तिका शुभराग होता है वह यथार्थ भक्ति नहीं है अथवा वह ज्ञानीपुरुषकी आज्ञामें नहीं होनेसे ऐसी भक्ति ज्ञानीकी दृष्टिमें मान्य नहीं है। 'गुणकी उपासना और भक्ति अविनाभावी है' अथवा कारण-कार्यरूप है। सद्वर्तनरूप गुणका आचरण वह ज्ञानीकी मुख्य आज्ञा है। अगर जीव इसकी उपासना करे तो बहुत शास्त्रोंके अभ्याससे प्राप्त होनेवाला फल, सहजमें उपरोक्त भक्तिसे प्राप्त हो सकता है। क्रमशः आगे जाकर इससे आत्मनिष्ठता प्राप्त होती है। प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषके चरणकमलकी उपासना जिसका मूल है, ऐसे मार्गका क्रम, इस प्रकार जानने योग्य है। (१११६)

*

सन्मार्गको चाहनेवाले व उसकी गवेषणा करनेवाले ऐसे आत्मार्थी जनको अनादि स्वच्छंदसे रहित होनेके लिए परम वीतरागस्वरूप जिनेश्वरदेव, स्वरूपस्थित निस्पृही निर्ग्रंथ गुरु, परमदयामुल वात्सल्ययुक्त धर्म व्यवहार और परमशांत अमृतरस - रहस्य वचन स्वरूप सत्शास्त्रकी परमभक्तिपूर्वक उपासना साधकदशाके अंत तक कर्त्तव्य है। आत्मकल्याणके भावनावान जीवको ऐसा प्रकार सहज होने योग्य है। इस प्रकार स्वच्छंद गलनेसे जीव, देहादि और रागादिसे भिन्न, परम शुद्ध प्रत्यक्ष चैतन्यमय आत्माका भेदज्ञान करनेके लिए सक्षम होता है। और विभावसे सहज उपराम होकर, निज स्वरूपमें स्थिर होता है। (११२१)

*

प्रत्यक्ष धर्मात्माकी पहचान होने पर, मुमुक्षुजीवको परमेश्वरबुद्धिसे परम भक्ति प्रगट होती है, सर्वस्व देनेवालेके प्रति परम प्रेमार्पण भाव उल्लसित होता है। जिसके कारण स्वच्छंद और मानादि शत्रु-महादोषका नाश होकर नम्रता उत्पन्न होती है, सर्वार्पणबुद्धि आनेसे, तन-धनादिकी आसक्तिका प्रतिबंध मिटता है और वैराग्यमय परिणाम होनेसे लोभकी चिकाश मिटती है। भक्ति वह निजहितकी गरजरूप पात्रता होनेसे, सत्संगरूपी वृक्षकी उपासना करनेके लिए आवश्यक सरलता सहित सेवन होनेसे, अमृत फलकी उत्पत्ति होती है। इसलिए परम कृपालुदेवने मुमुक्षुके लिए भक्तिको 'श्रेष्ठमार्ग' कहा है, अर्थात् सरल - सुगम कहकर परम उपकार किया है। मुमुक्षुकी भूमिकामें भक्तिसे भीगे हुए परिणाम भावनावृद्धि करके अनेक दोषोंके निवृत्तिकारक हैं। ज्ञान तो बहुमूल्य गिना जाता है, तथापि भक्तिके बिना वह शून्य है। (११५७)

*

प्रश्न :- निज स्वरूपका बोध प्राप्त हो, ऐसी बोधबीज योग्य भूमिका कब प्राप्त होती है ?

यह एक सानंद आश्चर्य है कि : परमात्मा और स्वआत्मा भी सत्पुरुषके चरण सानिध्यके आगे मुख्य नहीं होते हैं !! तथापि उस जीवको पारमार्थिक लाभ होता है। सत्पुरुषके प्रति बहुमान आत्माको निर्मल करता है। उस भूमिकाका वह अमृत है। (१३१३)

*

मुमुक्षुकी भूमिकामें यथार्थ निर्मलता / पात्रता आनेमें मुख्य / खास कारण सत्पुरुषके प्रति परम प्रेमार्पण होना वह है। यह अद्‌भूत व सुगम उपाय है। (१३३२)

*

प्रेमरूप भक्ति वर्धमान होकर पराभक्तिमें परिणमित होती है, तब ज्ञानीपुरुषमें ऐक्य भाव उत्पत होता है, जिससे मुमुक्षुजीवकी भमिकामें दर्शनमोह यथार्थरूपसे अत्यंत मंद होता है, और निज परमात्मामें ऐक्यभाव होनेकी योग्यता प्राप्त होकर, ऐक्यता सधती है । अनन्तकालमें यही एक मार्ग है। (१३४३)

*

प्रेमरूप निर्मल भक्ति महान पदार्थ है। उपदेशबोध और सिद्धांतबोध उसके गर्भमें समाते हैं। जिससे क्षणमात्रमें स्वरूप सधता है। यह भक्ति आत्मगुणके प्रति अनन्य प्रेम है, जो ऐक्यताको साधती है, आत्मगुणको साधती है। (१३५९)

*

आत्मा निर्मल होनेके लिए आत्मारूप ऐसे ज्ञानीपुरुषकी निष्काम भक्ति योगरूप संग - वह सर्वश्रेष्ठ उपाय है। बहुत शास्त्रोंका व तीर्थंकरदेवके 'मार्ग बोध' को देखा जाये तो वह यही है। ऐसे मार्गबोध पर कोई महाभाग्यका लक्ष जाता है, वह संसार तिर जाता है, सुगमतासे तिर जाता है। (१४०१)

*

सत्पुरुषकी यथार्थ भक्ति प्रगट होने पर, उनकी आत्मचेष्टामें ही वृत्ति रहा करे, उनके अंतर पुरुषार्थका बहुमान निरंतर रहा करे, (और) सिर्फ वे ही नजरमें रहे - उनके अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होने पर, स्वच्छंद और प्रतिबंध मिटे और सहज मात्रमें आत्मबोध प्रगट हो। ऐसी भक्तिको नमस्कार हो ! पुनः पुनः नमस्कार हो !! (१४२३)

*

आत्म-परिणामकी निर्मलता होनेके लिए सत्पुरुषकी 'निष्काम भक्ति' मुमुक्षुको उत्कृष्ट कारण है। ऐसी निर्मलता समझकी यथार्थतामें और प्रयोजनकी सूक्ष्मताकी अंगभूत है। (१४२८)

*

जिज्ञासा :- जो जीव निज स्वरूपसे अनजान है, वह निज स्वरूपके साथ कैसे प्रेम कर सकता है ? अपनी आत्मासे प्रेम करना वह पराभक्ति है या अपने प्रभु (उपकारी सत्पुरुष) के साथ प्रेम (ऐक्यभाव) करना वह पराभक्ति है ? ऐसे प्रेमका यथार्थ स्वरूप कैसा होता है ?

उत्तर :- मुमुक्षुको प्रथम (स्वरूपनिश्चयके पहले) प्रत्यक्ष उपकारी ज्ञानीके प्रति प्रेमरूप भक्ति आती है। ऐक्यभावको प्राप्त हो, ऐसी अत्यंत भक्तिका निष्कामभावसे उत्पन्न होना, वही उसका आत्माके प्रति प्रेम है, क्योंकि उसके भावमें सत्पुरुष और आत्मा अलग-अलग नहीं है। उसीका नाम ऐक्यभाव है अथवा पराभक्ति है। उसका स्वरूप ऐसा है कि एक क्षण भी उनके वियोगमें रहना, वह असह्य बन जाता है। सत्पुरुष ही उसका जीवन बन जाते हैं। (१४३२)

***

'भक्ति'

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

यद्यपि हर एक सम्प्रदाय ने 'भक्ति' को रूढिगतरूप से मान्य किया है। और तदर्थ प्रायः भजन, संकीर्तन, पद्यरचना और गाना-गववाना इत्यादिक प्रकार से प्रवृत्तियाँ भी करने में आती हैं। तथा कहीं तो प्रभु व गुरुसेवा / समर्पणतादि प्रकारों को भी भक्ति के रूप में स्वीकारा जाता है। तथापि भक्ति को मात्र इतनी ही मर्यादा में मान्य करना योग्य नहीं; क्योंकि इसकी गहनता अत्यंत परमार्थ हेतुभूत है। अतः इस विषय को, अति गंभीरतापूर्वक, अनेकविध पहलुओं से निज आत्मश्रेयार्थ विचार करना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में यह यत्किंचित् विचार प्रस्तुत हैं-

सर्वप्रथम यहाँ 'भक्ति' के विषय में यह गवेषणीय है किः लोक में प्रायः 'भक्ति' को रूढिअर्थ अनुसार शुभराग की प्रवृत्ति / पर्याय समझी-मानी जाती है। कारण कि अधिकांश धार्मिकक्षेत्र में ओघसंज्ञापूर्वक रागमय भक्ति की प्रवृत्ति प्रचलित है। परंतु वास्तव में यदि 'भक्ति का मूल' अन्वेषण किया जाए तो वह केवल रागमय परिणाम नहीं है; बल्कि जो मुमुक्षु सर्व प्रकार की मोहासक्ति से अकुलाकर, एक मात्र पूर्ण शुद्धि के लिये ही प्रयत्नवंत है, ऐसे अधिकारी मुमुक्षु के ज्ञान में, धर्म और धर्मात्मा के अंतर स्वरूप की पहचान द्वारा, उनका मूल्यांकन भासित होने से, उसके ज्ञान में उनके प्रति सहज ही बहुमान स्फुरायमान होता है, और वैसा 'ज्ञान' ही वास्तव में 'भक्ति का मूल' है, 'स्वरूप' है। अतएव प्रस्तुत संदर्भ में यों फलित होता है किः भक्ति को जिस रुढि अर्थ में केवल शुभराग की ही पर्याय समझने-मानने में आती है वह पर्याप्त नहीं है। परंतु यदि वस्तुस्थिति से उसके मूलस्वरूप के बारे में सोचा जाए तो यह सहज स्पष्ट हो सके ऐसा है कि, वैसा प्रकार ज्ञान की पर्याय है; क्योंकि उसमें यथार्थ समझ / मूल्यांकन का प्रभुत्व प्रगट है।

तथा, भक्ति का लक्ष्यार्थ तो आत्मा, निजपरमात्मभाव में एकरूप (तदाकार) हो जाये वह है। स्वयं का अनंत सामर्थ्य यानी कि अपना साक्षात् सिद्धपद, अपने स्वरूप-सन्मुख ज्ञान में प्रतिभासित होनेपर, अपने अनंत महिमावंत-परम पदार्थ के प्रति परम महिमा अर्थात् 'उसरूप' भक्ति उत्पत होकर, अभेददशा संप्राप्त हो जाए तब आत्मा निजपरमात्मभाव में एकरूप होता है; और वैसी स्वानुभूति में 'सर्वजिनशासन की भक्ति और बहुमान' समाहित हो जाता है। इसीलिए धर्मात्माओंने उसका बहुत बखान किया है।

उसी भाँति 'भक्ति' के लक्ष्यार्थ में परमार्थ समाया हुआ होनेसे, तथा वह सर्व दोषों की निवृत्ति की हेतुभूत होनेसे, उसे (भक्ति को) परम कृपालु 'श्रीमद् राजचंद्रजी' ने 'श्रेष्ठ मार्ग' कहा है।

अतएव मुमुक्षु को भक्ति के प्रकरण की, उसके आशय की स्पष्टता के लिये और लक्ष्यार्थ हेतु उसके यथार्थ स्वरूप को गुरु गम द्वारा समझकर, उसका अवगाहन करना परम आवश्यक है।

अब यहाँ उल्लेखनीय है कि : 'भक्ति' के मुख्य दो भेद हैं - व्यवहारभक्ति और निश्चयभक्ति। तथा उसके विशेष भेद अनेक हैं।

❊ **व्यवहारभक्ति** :- सद्देव प्रति की भक्ति, सद्गुरु और सत्श्रुत-सिद्धांत प्रति की भक्ति। उसी तरह साधर्मी प्रति की भक्ति। यह व्यवहारभक्ति, अनादि संसार प्रति की भक्ति का निषेध करती है।

❊ **निश्चयभक्ति** :- निज परमात्मस्वरूप के सम्यक् रत्नत्रयमय-परिणामरूप से परिणमन करना। ऐसे परिणाम का निरूपण, अध्यात्मशास्त्रों में विविध शैली द्वारा करने में आया है। अध्यात्मरस से सराबोर भावों से, इस निश्चयभक्ति का प्रतिपादन करनेवाले संतों और महात्माओं का आंतरिक व्यक्तित्व वंदनीय है, अभिवंदनीय है। यह निश्चयभक्ति, व्यवहारभक्ति का निषेध करती है, कारण कि यह उससे पर है।

तथा, भक्ति में अनेक गुण-धर्म होनेसे, सत्सशास्त्रो में तद्विषयक विविध भेदों का अनेक नाम से उल्लेख देखने में आता है। यथा : १. नामभक्ति। २. सकामभक्ति। ३. निष्कामभक्ति। ४. आश्रयभक्ति। ५. प्रेमभक्ति। ६. मार्गभक्ति। ७. पराभक्ति। ८. अभेदभक्ति। ९. रहस्यभक्ति। १०. योगभक्ति। ११. निर्वाणभक्ति। १२. श्रुतभक्ति।-इनका संक्षिप्त वाच्यार्थ निम्न हैः-

❊ **नामभक्ति** :- कथानुयोग में श्री तीर्थंकरादिपुराणपुरुषों के चरित्रों द्वारा उनके उपकारका स्मरण होता है। तथा उनकी दृढ़ आत्मनिष्ठता और भीष्म पुरुषार्थ के दर्शन होनेपर उनके प्रति बहुमान के परिणाम स्फुरायमान होना, वह नामभक्ति है।

ऐसा प्रकार व्यक्ति-राग नहीं है अपितु वह गुणानुराग है। जिसमें वैसे सर्व गुणवान महात्माओं प्रति का भक्तिभाव समाविष्ट है। एक महात्मा के आदर में, वैसे सर्व (महात्माओं) का आदर, स्पष्ट अभिप्रायपूर्वक अभिव्यक्त होता है; वह ज्ञानादि गुण प्राप्ति का कारण है।

❊ **सकामभक्ति** :- भौतिक पदार्थों की कामना-निदानपूर्वक की जानेवाली भक्ति, वह सकामभक्ति है। इससे ज्ञान को आवरण आता है। इसमें अशुचि आदि दोषों का संभव है। और वह संसार परिभ्रमण का कारण होने से त्याज्य है।

❊ **निष्कामभक्ति** :- सर्व प्रकार की कामना / आसक्ति रहित परिणाम से, अपने आत्मकल्याण में निमित्तभूत ऐसे पंचपरमेष्ठी, सत्पुरुष और उनकी वाणीरूप श्रुत-सत्शास्त्रों के स्वरूप को पहचानकर उनके प्रति अत्यंत उल्लसित भाव होना, वह निष्कामभक्ति है। ऐसी भक्ति स्वयं पवित्र होने से वह आत्मगुण वृद्धि का तथा दोष निवृत्ति का कारण है। निःस्पृहता के आश्रय से अनेक गुण समुत्पन्न होने से उसका विशेष महत्त्व है।

❊ **आश्रयभक्ति** :- मुमुक्षु/ आत्मार्थीजीव को विद्यमान सद्गुरु-सत्पुरुष की पहचान और प्रतीतिपूर्वक, सर्वार्पणबुद्धि से उस महापुरुष के चरण-शरण के आश्रय से वर्तने का दृढ़ निरधार हुआ हो; वह प्रकार ऐसा कि उसे उस महापुरुष की विद्यमानता में तो उनके चरण-सान्निध्य में निरंतर वास करने का अभिप्राय तो वर्तता ही हो किंतु यदि वैसे रहना बनता न हो अथवा उनकी अविद्यमानता-परोक्षता अथवा विरह हो तब वह आश्रयभाव विशेषरूप से दृढ़तर हो, वह आश्रयभक्ति है।

अनादि से जीव में जो मान और स्वच्छंद जैसा रूढ / प्रबल महादोष प्रवर्तता है, उसे टालना बहुत दुष्कर है। तथापि वैसे महादोष भी वैसी आश्रयभक्ति से सहज मात्र में नाश होकर, आर्जवता (सरलता) और मार्दवता (नम्रता) आदि गुण प्रगट होते है। उसी भाँति मार्गप्राप्ति की परम योग्यता की संप्राप्ति होती है। जितने प्रमाण में आश्रयभक्ति दृढ़ हो उतने ही प्रमाण में सत्पात्रता प्रगट होती है।

❊ **प्रेमभक्ति** :- सुपात्रतावश मुमुक्षु को ज्ञानी धर्मात्मा की पहचान होने से, उनके प्रति अत्यंत प्रेम-परिणामों का प्रवाह निरंतर प्रवाहित रहे, और 'पर प्रेम प्रवाह बढ़े प्रभुसे'-ऐसा परिणाम सत्पुरुष के प्रति सर्वार्पणबुद्धि से उत्पन्न हो, वह प्रेमभक्ति है।

इस परिप्रेक्ष्य में पूज्य श्री सोभाग्यभाई एक जीवंत उदाहरण हैं। परम कृपालु श्रीमद्‌जी स्वयं लिखते हैं कि 'श्री सोभाग्य प्रेमभक्ति में झूल रहे हैं।' दोनों के बीच एक क्षण का भी वियोग पुसाता नहीं था। सत्पुरुष के प्रति इस प्रकार का प्रेमभाव आत्मरूचि का द्योतक है और वह समभक्ति का भी बीज है।

तथा, अंतर में गुणनिधानरूप निज आत्मस्वरूप की स्पष्ट अनुभवांश से पहचान होने पर, स्व-रूप की अनन्य रुचि उमड़ना, वह निज प्रभु की प्रेमभक्ति है, जो समकित की अंगभूत है।

* **मार्गभक्ति** :- मोक्षमार्ग में स्थित सर्व धर्मात्माओं के प्रति बहुमान के परिणाम होना, मार्गभक्ति है। उसी भाँति जिन के अंतर में त्रिलोकनाथ वश हुए हैं, ऐसा होनेपर भी जो बाह्य में अटपटी दशा से रहते हैं, यानी कि इतनी अधिक समर्थता होनेपर भी जिन्हें गर्व नहीं है, गारव नहीं है, उन्मत्तता नहीं है, ऐसे आश्चर्य की प्रतिमारूप सत्पुरुष के प्रति; एवम् स्वरूपगुप्त हो जाने से जो बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथ दशा से बिराजमान हैं, ऐसे उनके परम संयम के प्रति; भक्ति के परिणाम सहज ही उल्लसित होते हैं, वह मार्गभक्ति है।

तथा अंतर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उपासना हेतु उल्लसित वीर्य के परिणाम, निश्चयमार्ग भक्ति है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि, जिनके दर्शनमोह का अभाव वर्तता है, ऐसे मोक्षमार्ग में विचरण करते महात्माओं के प्रति मुमुक्षुजीव को विनय-बहुमान होने पर उसके दर्शनमोह का अनुभाग घटता है, जिससे उसको मार्ग की निकटता होती है। 'मार्गभक्ति' यह गुरु-भक्ति है अर्थात् महान् पुरुष की भक्ति है।

* **पराभक्ति** :- चरम सीमा के भक्ति-महिमा के परिणाम होना, पराभक्ति है। जब आत्मा को अपने अनंत महिमावंत स्वरूप की पहचान होनेपर, स्वरूप-महिमा वृद्धिगत होकर, तादात्म्य भाव होता है, वह पराभक्ति है। उसे 'सर्वार्थसिद्धि' में स्वरूप-भावनारूप भक्ति की संज्ञा दी है।

* **अभेदभक्ति** :- स्वस्वरूप के आश्रय से आत्मा के सर्व परिणामों का अभेदभाव से परिणमित होना, अभेदभक्ति है। निज परमात्मा के साथ अभेदता सधानेपर, स्वरूप संबंधी कोई भेद-विकल्प (शेष) नहीं रहता है और निर्विकल्पदशा संप्राप्त होती है। आत्मा, अनंत दिव्य गुणों से भरितावस्थ है। गुण, परस्पर भिन्न भिन्न होनेपर भी वे आत्मीयरूप से अभेद हैं। ऐसे अभेदस्वरूप की दृष्टि में, गुणभेद की अपेक्षा भी निरस्त हो जाती है। तथा सर्व भाव से अभेदता सधाती है।

* **रहस्यभक्ति** :- श्री जिनवाणी में व्यवहार और निश्चय भक्ति का प्रतिपादन हुआ है, उसमें रहस्य समाया हुआ है। वह रहस्य यदि लक्ष्यगत हो, तो जीव सुगमता से परमार्थ को संप्राप्त होता है। ज्ञानमार्ग द्वारा तथा क्रियामार्ग द्वारा परमार्थ साधने में जो दुराराध्यता है वह भक्तिमार्ग द्वारा नहीं होती, यही भक्ति का रहस्य है। यद्यपि ज्ञान का मूल्य (विशेषता) सर्वविदित है तथापि 'भक्ति बगैर ज्ञान शून्य है'- परम कृपालु देव श्रीमद् राजचंद्रजी का यह वचनामृत, विस्मरण करने योग्य नहीं है। जहाँ ज्ञान यथार्थ होता है वह भक्ति- भाव अविनाभावीरूप से समुत्पन्न होता है। तथा जहाँ शुद्ध अंतःकरण से भक्ति-भाव स्फुरायमान होता है वहाँ ज्ञान की सहज निर्मलता होती है, मोह का बल क्षीण होता है। जीव को मार्ग की प्राप्ति में जो सबसे भारी प्रतिबंधक कारण है वह 'मोह' है; उसका निरसन, उक्त प्रकार की भक्ति के परिणामों द्वारा सुगमता से होता है।-इस रहस्यभूत कारण की सिद्धि, रहस्यभक्ति है। जिसे ऐसा भक्ति-रहस्य यथार्थरूप से समझ में आए तो उसे भक्तिमार्ग के प्रति जुगुप्सा नहीं होती, प्रत्युत वह इस रहस्यभक्ति की सिद्धि / उपासनार्थ विशेष उद्यमवंत होता है। ऐसे आत्मार्थी जीव के जीवन का एकमात्र लक्ष्य पहले से ही पूर्ण शुद्ध का होने से वह राग-प्रधानता से, ओघसंज्ञा में रहकर राग में नहीं रुकता। तथा उसे अपने भावों का अवलोकन, आत्मजागृतिपूर्वक, निरंतर वर्तता है।

उक्त भक्ति का यह रहस्य है कि : वैसी यथार्थ भक्ति द्वारा दर्शनमोह व स्वच्छंद की हानि, और मल-

विक्षेपादि दोषों की निवृत्ति सहजरूप से और सुगमता से होती है।

अनेक महान् आचार्यो ने श्री तीर्थंकरदेव के स्तोत्र व स्तवन द्वारा गहन तत्त्व / सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। अनेक धर्मात्माओं ने भी द्रव्यानुयोग के परम गंभीर और सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवचन रहस्य को निर्ग्रंथ गुरु या परम गुरु के नाम से स्तवनादि में समाया है, गाया है।-ऐसी रचनाओं को, मात्र उनका राग मानना उचित नहीं है। अपितु वह तो उनका स्तुतिपात्र विवेक है।

आत्मार्थीजीव के श्रद्धा व ज्ञान निर्मल होने का पूरकतत्त्व, रहस्यमयी ढंग से, भक्ति होती है उक्त प्रकार की समीचीन / यथार्थ समझ, वास्तव में रहस्यभक्ति है।

❊ **योगभक्ति** :- श्रीमद् पद्मप्रभमलधारीदेव ने, इस शब्द का प्रयोग श्री 'नियमसार' परमागम की टीका में किया है। उन्होंने भक्ति-अधिकार में, 'उपयोग का परमस्वरूप में युक्त होना' उसे योगभक्ति की संज्ञा दी है। गाथाः १३७ - १३८ में कहा है कि : अखंड परमानंदस्वरूप में युक्त (जोड़ने) रूप योगभक्ति, वह मुनिश्वरोंनी निर्वाण की हेतुभूत है। और इसी मार्ग से सर्व मुनीश्वर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। तथा गाथा- १३९ में अन्य विवक्षा से ऐसा निरूपण किया है कि : जिनोक्त तत्त्वों में आत्मा को लगाना, योगभक्ति है। इसी प्रकार ऐसे परिणामों को अन्यत्र 'समाधिभक्ति' की भी संज्ञा दी गई है।

❊ **निर्वाणभक्ति** :- सम्यक् रत्नत्रय-परिणामों का जो भजन है वह 'निश्चयभक्ति' है। (-श्री 'नियमसार'गाथा-१३४) यह निश्चयभक्ति निर्वाण की कारणभूत होने से उसे 'निर्वाणभक्ति' कही है। इस भक्ति द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होती है।

सिद्ध पद के अभिलाषी जीवों के द्वारा, अपने आदर्शस्वरूप, निर्वाण को संप्राप्त ऐसे सिद्ध परमात्मा की भक्ति, सिद्धभक्ति है। ऐसी भक्ति, व्यवहारभक्ति है; उसमें अपने सिद्धपद के स्मरण का अभिप्राय गर्भित है।

❊**श्रुतभक्ति** :- श्री सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव, श्री गणधरादि निर्ग्रंथ गुरुभगवंत और मूर्तिमान आत्मज्ञानस्वरूप सत्पुरुषों की वाणी द्रव्यश्रुत है। उसकी उत्पत्ति आत्मकल्याणरूप स्वरूपानुसंधान सहित हुई होने से वह, जिसकी काललब्धि पक गई है ऐसे जीवों के आत्मकल्याण में यानी कि भावश्रुत प्रकट होने में निमित्त बनती है। और उसमें इस प्रकार का निमित्तत्व सदैव विद्यमान होने से उसकी पूज्यता सुविदित, सुप्रसिद्ध और सर्वमान्य है। इस तरह द्रव्यश्रुतरूप जिनवाणी के प्रति पूज्यबुद्धिपूर्वक बहुमान के परिणाम, श्रुतभक्ति है। श्री 'समयसार कलश टीका' (कलश-२) में श्री जिनवाणी को 'सर्वज्ञस्वरूपअनुसारिणी' कहकर उसकी पूज्यता दर्शायी है।

'साभार धर्मामृत' अध्यात्म-२ गाथा ४४ में यों कहा है कि 'जो भक्तिपूर्वक श्रुत (जिनवाणी) की पूजा करते हैं, वे मनुष्य वास्तविक में जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं, क्योंकि गणधरदेव ने जिनवाणी और जिनेन्द्र देव में लेशमात्र भी अन्तर नहीं कहा है।'

मोक्षमार्गी धर्मात्मा छद्मस्थ अवस्था में होनेपर भी उनकी वाणी, निज अंतर् सर्वज्ञस्वभाव को स्पर्श कर, सहजभाव से व्यक्त होती होने से वह वाणी, सर्वज्ञस्वरूपअनुसारिणी होती है। तीनों काल के सर्व ज्ञानियों की वाणी पूर्वापर अविरोधी, आत्मार्थ उपदेशक, अपूर्व अर्थ का निरूपण करनेवाली होती है और अनुभवसहित होने से उसमें एक परमार्थ का ही आशय सन्निहित होने से वह वाणी, आत्मार्थी के लिए परम उपकारभूत निमित्त है। अतएव वह पूजनीय है, अभिवंदनीय है।

श्रुतभक्त और प्रभावनाअंगधारक सर्व सम्यग्दृष्टि महात्माओं को ऐसी भावना, श्रुतभक्ति के कारण, वर्तती ही है कि : जिवों के कल्याण हेतु ऐसी परम उपकारभूत वाणी, अर्थात् सत्श्रुत का अधिक से अधिक प्रचार-प्रसार हो कि जिसके निमित्त से सर्व जीवराशि संसारक्लेश से परिमुक्त हो। इसी भाँति ऐसी भावना, ज्ञानी के मार्ग

को दृढ़ता से अनुसरण करनेवाले मुमुक्षु को भी होती है।

श्रुतभक्ति से मुमुक्षुजीव के दर्शनमोह का अनुभाग घटता है और उससे ज्ञानादि भावों में निर्मलता / विशुद्धता प्राप्त होती है।

यद्यपि बाह्य में उपास्य को कर्ता आदि बनाकर भक्ति की जाती है। परंतु अंतरंग भावों के सापेक्ष होनेपर ही यह (भक्ति) सार्थक है अन्यथा नहीं। आत्मस्पर्शी भक्ति ही सच्ची भक्ति है। भक्ति, मोक्षमार्ग का प्रधान अंग है। इसकी महत्तावश समर्थ आचार्यों ने भी भक्तिपाठ रचे हैं। उदाहरणार्थ : प्राकृत में भक्तिपाठ आचार्य कुंदकुंददेव और पद्मनंदिदेव कृत उपलब्ध हैं। तथा संस्कृत में भक्तिपाठ आचार्य पूज्यपाद स्वामी और श्रुतसागरजी द्वारा रचित उपलब्ध है। जिनागम में साधुओं की नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के प्रयोग में आनेवाली तेरह प्रकार की भक्तियों का वर्णन भी मिलता है। इसी भति साधु की आहारदान के समय नवद्या भक्ति, तथा साधु के नित्य के कृतिकर्म में चतुर्विंशतिस्तव का भी वर्णन मिलता है।

अंत में, अनेक दोषों की निवृत्ति और आत्मार्थी के योग्य अनेक गुणों की उत्पत्ति का कारण समझकर भक्ति का महत्त्व अवधारणीय है।

उल्लेखनीय है कि, परम कृपालु देव श्रीमद् राजचंद्रजी ने अति सुंदर और अभिनव भाव-प्रयोग द्वारा फरमाया है कि : ज्ञानी गुरु की भक्ति शुद्धाचरण से प्राप्त होती है। अथवा ज्ञानी की आज्ञा, उसकी उपासनारूप सद्वर्तन, ज्ञानीपुरुष की भक्ति है। जिस जीव को ज्ञानी के मार्गपर चलने का दृढ़ निश्चय हो, वह अवश्य संसार चक्र से छूट जाता है। ऐसे भक्तिवान जीव को, पात्रता के अंगभूत वैराग्य, सरलता, नम्रता, क्षमा आदि गुण सहज मात्र में उद्भव होते हैं। जिससे क्रोधादि चारों ही प्रकृतियाँ स्वयमेव उपशांत होती हैं। जीव को अनेक प्रकार के प्रतिबंधो के निरसन हेतु भक्ति एक सुगम साधन है। यद्यपि आत्मज्ञान के बिना सर्व दोषों और दुःखो का क्षय नहीं होता; अतः उनकी दुर्धटता को देखकर, निष्कारण करुणाशील ऐसे सत्पुरुषों ने आत्मज्ञान का कारणभूत ऐसा जो भक्तिमार्ग, उसको प्रकाशित किया है; जो सर्व को सुगमता से शरणरूप है।

जिसके कारण जीव को परमें अपनत्व हो रहा है ऐसा जो अहंभाव, कि जिसकी निवृत्ति होना अति दुष्कर होता है; उसकी निवृत्ति होकर, अन्यत्र कहीं रुकना न हो, सर्व विकल्प मिटे और सर्व सिद्धि संप्राप्त हो, उसके लिए सरल / सुगम साधन-आत्मकल्याण की संपूर्ण ग़रज़ से उत्पन्न-भक्ति है। यह ध्यातव्य है कि भक्ति साधन है, साध्य नहीं, साध्य तो पूर्ण पवित्र निवार्ण पद है।

मोक्षमार्ग की प्राप्ति के सिवा जन्म-मरण का अंत नहीं आ सकता है। और मोक्षमार्ग की प्राप्ति योग्यता बिना संभव नहीं है। तथा योग्यता की प्राप्ति सरलता, वैराग्य, भक्ति सहित सत्संग की उपासना से होती है। अतएव मोक्षमार्ग व उसकी समीपता हेतु योग्यता गढ़ना परम आवश्यक है।

जो अध्यात्मविद्या सद्गुरु के परम विनय से प्राप्त होती है, वह विनय, भक्ति की ही आचरणरूप पर्याय है। और वैसे आचरण को नवधा भक्ति कही है।

उल्लिखित व्यवहार और निश्चय-दोनों प्रकार की भक्ति अत्यंत प्रयोजनीय है। अतः आत्मश्रेय के अभिलाषी जीव को, भक्ति के स्वरूप को यथार्थरूप से समझ कर उसको भलीभांति अंगीकार करना चाहिए। मात्र पद्य / भजन गाने-गववाने की रूढ़ि, 'भक्ति' का पर्याप्त स्वरूप नहीं है; अतएव वैसे प्रकार में ही अटकना योग्य नहीं है।

ॐ शांति

(**'तत्वानुशीलन'में से**.....)

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी. १३-B

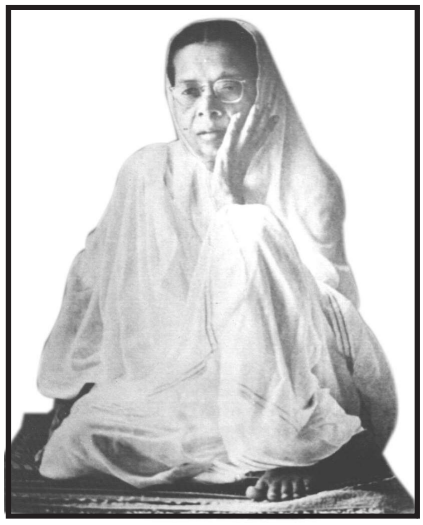

मुमुक्षु :- गुरुदेव फरमाते हैं कि यह समयसारजी आगमों का भी आगम है। लाखों शास्त्रों का सार है, जैनशासन का स्तंभ है, साधक को कामधेनू और कल्पवृक्ष है एवं छठे-सातवें गुणस्थान में झुलते महामुनिके अनुभवमें से आयी हुई यह वाणी है। गुरुदेवने जो आगमों का भी आगम कहा, वह किस भावसे कहा है, यह कृपा करके समझाईये।

समाधान :- आगमों का आगम है, परमागम है। प्रत्येक आगम का आगम है। अध्यात्मसे भरा है। आत्मा को मुक्ति का मार्ग मिले ऐसा है। आत्मा के स्वरूप की बात है। छठे-सातवें गुणस्थान में झुलते मुनिराजने किया है। परन्तु आगमों का आगम है। प्रत्येक आगम का आगम। जिसमेंसे मुक्ति का मार्ग मिले ऐसा है। अध्यात्म का पूरा भण्डार भरा है। इसलिये आगम का आगम कहा है। परमागम। प्रत्येक आगम (हैं), परन्तु यह आगम तो आगमों का आगम है। मुक्ति का मार्ग, आत्मा का स्वरूप, आत्मा का स्वभाव, आत्मा आश्चर्यकारी वस्तु है, उसकी स्वानुभूति कैसी होती है? उसका मुक्ति का मार्ग कैसा होता है ? ज्ञाता का, कर्ता का इत्यादि अनेक प्रकार का स्वरूप उसमें आया है, इसलिये आगम का आगम है। कामधेनू गाय जैसा है। जो चाहिये सब उसमेंसे प्राप्त होता है। निश्चय-व्यवहार की संधि आदि सब उसमेंसे मिलता है।

मुमुक्षु :- कल्पवृक्ष कहा।

समाधान :- कल्पवृक्ष है। जो चाहता वह उसमेंसे मिलता है। सब उसमेंसे मिलता है। सब उसमें आ गया है। इसलिये आगमों का आगम है। वस्तु कैसी है? निश्चयसे क्या? व्यवहारसे क्या? मुक्ति का मार्ग क्या? ज्ञाता, कर्ता आदि सब अन्दर (आ गया है)। भेदज्ञान पूरा स्वरूप आता है। स्वानुभूति किसे कहते हैं, यह सब आया है।

मुमुक्षु :- माताजी! छः महिने पर्यंत पुरुषार्थ करे, कदाचित् मन्द पुरुषार्थ निरंतर चालू रहे और सम्यग्दर्शन हो तो, यह कौन-सी भूमिका है?

समाधान :- क्या? भूमिका में..?

मुमुक्षु :- छः महिने पर्यंत मन्द पुरुषार्थसे भी निरंतर पुरुषार्थ चालू रहे तो उसे सम्यग्दर्शन होता है, तो वह भूमिका कैसी?

समाधान :- मन्द पुरुषार्थसे पुरुषार्थ करे तो सम्यग्दर्शन होता है। छः महिने पर्यंत मन्द पुरुषार्थ ऐसा कहाँ आता है?

मुमुक्षु :- फिर पुरुषार्थ उग्र हो जाय, छः महिने के अन्दर।

समाधान :- ऐसा तो कोई नियम नहीं होता कि छः महिने पर्यंत उग्र पुरुषार्थ चले। किसीको उग्र-मन्द ऐसा होता रहता है। किसीको मन्द हो जाये, फिर उग्र हो जाय, फिर मन्द हो जाय, उग्र हो जाय। परन्तु उसका पुरुषार्थ चालू रहता है, ऐसा। ऐसा कोई नियम नहीं है कि छः महिने पर्यंत (चलता रहे)। किसीको निरंतर चालू रहे, किसीको मन्द हो, किसीको तीव्र हो, ऐसा हुआ करता है। ऐसा छः महिने तक करते-करते भी पुरुषार्थ टूट नहीं जाता। निरंतर चलता रहे। उसमें ऐसा कोई पुरुषार्थ उत्पन्न हो तो सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा तो कोई नियम नहीं है।

मुमुक्षु :- उसे सम्यक् सन्मुख कह सकते हैं?

समाधान :- पुरुषार्थ करता है वह सम्यक्त्व सन्मुख है? निरंतर पुरुषार्थ। निरंतर का अर्थ ऐसा नहीं है कि उसमें.. वह तो क्षयोपशम है, इसलिये क्षयोपशमभावसे पुरुषार्थ है। इसलिये मन्द-तीव्र, मन्द-तीव्र ऐसा होता रहता है। सम्यक्त्व सन्मुख है।

मुमुक्षु :- छः महिने में नहीं हो तो उसे उभयाभासी कहें या निश्चयाभासी कहें या व्यवहारभासी कहें?

समाधान :- क्या?

मुमुक्षु :- छः महिने तक भी उसके पुरुषार्थ में सम्यग्दर्शन नहीं प्राप्त होता तो उसे निश्चयाभासी कहें या व्यवहाराभासी कहें या उभयाभासी कहें?

समाधान :- छः महिने किया फिर नहीं हुआ तो उसका पुरुषार्थ मन्द है, ऐसा अर्थ है। उसमें निश्चयाभासी और व्यवहाराभासी ऐसा कुछ लागु नहीं पड़ता। निश्चयाभासी और व्यवहाराभासी ऐसा कुछ उसमें लागु नहीं पड़ता कि छः महिने पर्यंत नहीं हुआ इसलिये निश्चयाभासी है या व्यवहाराभासी है, उसका पुरुषार्थ मन्द है। उसकी दृष्टि मात्र शुष्क पर.. पर्याय को निकालकर आत्मा मात्र शुद्ध है, शुद्ध है, जो होना होगा वह होगा, हृदय जिसका भीगा हुआ नहीं है, ऐसी जिसकी परिणति हो उसे निश्चयाभासी कहते हैं। और मात्र व्यवहारसे होता है ऐसी मान्यता हो उसे व्यवहाराभासी कहते हैं। और कोई, ऐसा भी है, ऐसा भी है ऐसा करता रहे और अन्दर निश्चय-व्यवहार की सन्धि समझता नहीं और निश्चय भी सत्य और व्यवहार भी सत्य, इसप्रकार दोनों की कोटि समान कर देता है तो वह दोनों निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी है। जिसका ऐसा अभिप्राय है वह। लेकिन मन्द पुरुषार्थ है इसलिये छः महिने में नहीं हुआ इसलिये निश्चयाभासी या व्यवहाराभासी है ऐसा लागू नहीं पड़ता।

***

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (नवेम्बर-२०२२) का शुल्क श्री सुमतिलाल शिवलाल शाह परिवार, अमरिका की ओर से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

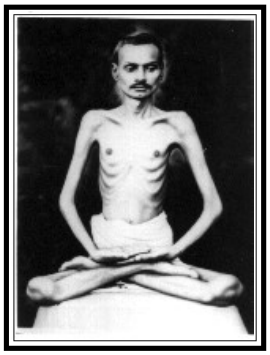

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

पत्रांक ३२९

बंबई, माघ वदी,१९४८

कोई क्षणभरके लिये अरुचिकर करना नहीं चाहता। तथापि उसे करना पड़ता है, यह यों सूचित करता है कि पूर्वकर्मका निबंधन अवश्य है।

अविकल्प समाधिका ध्यान क्षणभरके लिये भी नहीं मिटता। तथापि अनेक वर्षोसे विकल्परुप उपाधिकी आराधना करते जाते हैं।

जब तक संसार है तब तक किसी प्रकारकी उपाधि होना तो संभव है; तथापि अविकल्प समाधिमें स्थित ज्ञानीको तो वह उपाधि भी अबाध है, अर्थात् समाधि ही है।

इस देहको धारण करके यद्यपि कोई महान ऐश्वर्य नहीं भोगा, शब्दादी विषयोंका पूरा वैभव प्राप्त नहीं हुआ, किसी विशेष राज्याधिकार सहित दिन नहीं बिताये, अपने माने जानेवाले किसी धाम व आरामका सेवन नहीं किया, और अभी युवावस्थाका पहला भाग चलता है, तथापि इनमेसे किसीकी आत्मभावसे हमें कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, यह एक बड़ा आश्चर्य मानकर प्रवृत्ति करते हैं। और इन पदार्थोकी प्राप्ति-अप्राप्ति दोनो एकसी जानकर बहुत प्रकारसे अविकल्प समाधिका ही अनुभव करते हैं। ऐसा होनेपर भी वारंवार वनवासकी याद आती है, किसी प्रकारका लोकपरिचय रुचिकर नहीं लगता, सत्संगमें सुरत बहा करती है, और अव्यवस्थित दशासे उपाधियोगमें रहते हैं। एक अविकल्प समाधिके सिवाय सचमुच कोई दूसरा स्मरण नहीं रहता, चिंतन नहीं रहता, रुचि नहीं रहती, अथवा कुछ काम नहीं कीया जाता।

ज्योतिष आदि विद्या या अणिमा आदि सिद्धिको मायिक पदार्थ समझकर आत्माको उसका स्मरण भी क्वचित ही होता है। उस द्वारा किसी बातको जानना अथवा सिद्ध करना कभी योग्य नहीं लगता, और इस बातमें किसी तरह अभी तो चित्तप्रवेश भी नहीं रहा।

पूर्व निबन्धन जिस जिस प्रकारसे उदयमें आये उस उस प्रकारसे [१].... अनुक्रमसे वेदन करते जाना, ऐसा करना योग्य लगा है।

आप भी ऐसे अनुक्रममें चाहे जितने थोड़े अंशमें प्रवृत्ति की जाय तो भी वैसी प्रवृत्ति करनेका अभ्यास रखिये और किसी भी कामके प्रसंगमें अधिक शोकमें पड़नेका अभ्यास कम कीजिये; ऐसा करना या होना यह ज्ञानीकी अवस्थामें प्रवेश करनेका द्वार है।

आप किसी भी प्रकारका उपाधिप्रसंग लिखते है, वह यघपि पढ़नेमें आता है, तथापि तत्संबंधी चित्तमें कुछ भी आभास न पड़नेसे प्रायः उत्तर लिखना भी नहीं बन पाता, इसे दोष कहें या गुण कहें, परंतु क्षमा करने योग्य है।

सांसारिक उपाधि हमें भी कुछ कम नहीं है, तथापि उसमें निज भाव न रहनेसे उससे धबराहट उत्पन्न नहीं होती। उस उपाधिके उदयकालके कारण अभी तो समाधि गौणभावसे रहती है, और उसके लिये शोक रहा करता है।

लि. वीतरागभावके यथायोग्य।

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी द्वारा पूज्य भाईश्री शशीभाई को लिखित पत्र

कलकत्ता
१०-९-१९६३

ॐ
अज्ञानतिमिरांधानां ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

आत्मार्थी.....

पत्र आपका ता. ३-९ का मिला। पहलेवाला पत्र भी यथासमय मिल गया था। दशलक्षणी पर्व, आपने तीन लोक में परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंहस्वरूप श्री गुरुदेव के सान्निध्य में मनायें होंगे। वह कहते हैं - ''स्वभावअंश में किंचित् भी दोष नहीं है, नित्य स्वभाव में दृष्टि थंभ जानेसे, उत्पत हुए सहज स्वभाव में, क्षमा आदि दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जड़ के) पर के हैं; अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवंत वर्तो ! हमने कभी दोष किया ही नहीं, ऐसा स्वभाव निरंतर वृद्धि पामो। विभाव की गूँज में गूँजता हुआ अज्ञान भाव सहज नाश पामो। विभाव में तनीजो नहीं। स्वभाव-सीमा में निरंतर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिक की सीमा को पार नहीं कर सकता, अतः वहीं लय हो जाता है।''

''करता करम क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्तृत्व सकति अखण्ड रीति धरै है।
याहीके गवेषी होय ज्ञानमाहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनि या अनंत सुख भरे है।।''

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मँगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्वअवलंबन से सहज ही विभाव से पृथक् होकर प्रगटती रहती है। **हे शशीभाई !** अनेकानेक जीवों की योग्यता अक्षय सुख के उदय की है, अतः तीर्थंकर से भी अधिक सत्पुरुष का योग प्राप्त हुआ है, जिनकी नित्य प्रेरणा उधर से विमुख कराकर स्वयं के नित्य भंडार की ओर लक्ष्य कराती रहती है; यहाँ से ही पूज्य गुरुदेव के न्याय अनुभवसिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते हैं।....

''जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो, जिन ध्यावो सुमनेन।
जिन ध्यायंतहि परमपद, लहिये एक क्षणेन।।।''

वात्सल्यानुरागी निहालचंद्र

जिनेन्द्र भक्त 'पूज्य भाईश्री'

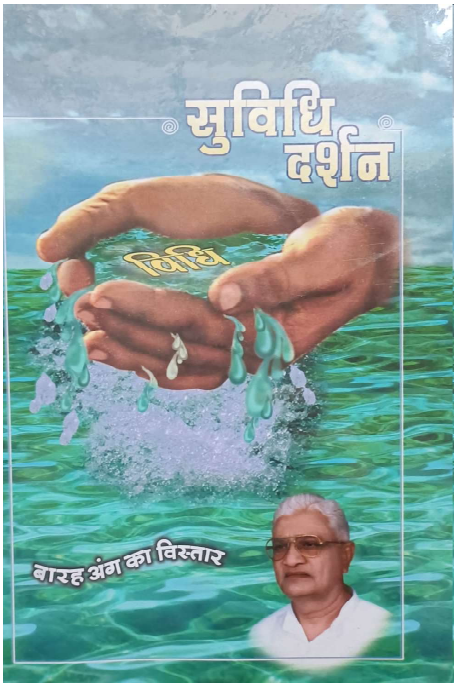

जिज्ञासुओं के लिए निःशुल्क भेट

जिनवाणी के परम भक्त **पूज्य भाईश्री शशीभाई की ९०वीं जन्म जयंतीके** उपलक्ष्यमें बारह अंग के सारभूत मोक्षमार्गकी विधिके विषय पर उनके प्रवचनोंकी पुस्तक '**सुविधि दर्शन**' निःशुल्क भेट दी जायेगी।

जिन तत्त्वरसिक जीवोंको इसकी आवश्यकता हो वे नीचे दिये गये वोट्सअप नंबर पर अपना नाम और पता पीन कोड़ सहित लिखकर भेजें। यह पुस्तक जिज्ञासु जीवोंके लिए बहुत उपकारी हो सकती है, यदि किसी ग्रंथालयोंमें इसकी आवश्यकता हो तो वे भी मँगवा सकते हैं।

संपर्क :- श्री नीरव वोरा मो. ९८२५०५२९१३